

श्रद्धादिगुणसंयुक्तो विनयंधरभूपतिः। पीत्वा तज्जलमत्युच्चैः संजातो रोगवर्जितः ॥८॥
 तज्जलास्वादनादेव गतो व्याधिः प्रवेगतः। भास्करस्योदये शीघ्रं प्रयात्येव यथा तमः ॥९॥
 प्रभावः श्रीमुनीन्द्राणां तपसः केन वर्ण्यते। यत्पादक्षालनं तोयं सर्वव्याधिक्षयप्रदम् ॥१०॥
 यथा सिद्धार्थमन्त्री च सत्तोयं भूभुजे ददौ। तथा भव्यैः प्रदातव्यं धर्मपानीयमङ्गिनाम् ॥११॥
 स श्रीपादौषधः स्वामी मुनीन्द्रो गुणसागरः। अस्तु मे शर्मणे नित्यं जैनतत्त्वविदांवरः ॥१२॥
 श्रद्धा श्रीजिनधर्मकर्मणि सतां दुःखौघविध्वंसिनी। देवेन्द्रादिनरेन्दचक्रिपदवीशर्मप्रदास्तोकतः ॥
 बाहुल्येन करोति या शुभतरा सत्केवलद्योतनं। व्यक्तानन्तचतुष्टयं शिवकरं सा शर्मणे वास्तु वै ॥१३॥

इति कथाकोशे श्रद्धाख्यानं समाप्तम्।

८४. स्वात्मनिन्दाफलाख्यानम्

सर्वदेवेन्द्रचन्द्राद्यैः पूजितं श्रीजिनेश्वरम्। संप्रणम्य प्रवक्ष्येहं स्वात्मनिन्दाफलोत्करम् ॥१॥
 काशीदेशे सुविख्याते पूते वाराणसी पुरे। राजा विशाखदत्तोभूतद्राज्ञी कनकप्रभा ॥२॥
 चित्रकारो विचित्राख्यो नानाचित्रविधायकः। विचित्रादिपताकाख्या तस्य भार्या बभूव च ॥३॥
 तयोर्बुद्धिमती पुत्री संजाता सुविचक्षणा। एकदा तस्य भूपस्य मन्दिरे वातिसुन्दरे ॥४॥

से अन्धकार जाता रहता है। सच है, महात्माओं के तप के प्रभाव को कौन कह सकता है, जिनके कि पाँव धोने के पानी से ही सब रोगों की शान्ति हो जाती है। जिस प्रकार सिद्धार्थ मन्त्री ने मुनि के पाँव प्रक्षालन का पवित्र जल राजा को दिया, उसी प्रकार अन्य भव्यजनों को भी उचित है कि वे धर्मरूपी जल सर्व-साधारण को देकर उनका संसार ताप शान्त करें। जैनतत्त्व के परम विद्वान् वे पादौषधिऋद्धि के धारक मुनिराज मुझे शान्ति-सुख दें ॥६-१२॥

जैनधर्म में या जैनधर्म के अनुसार किए जाने वाले दान, पूजा, व्रत, उपवास आदि पवित्र कार्यों में की हुई श्रद्धा, किया हुआ विश्वास दुःखों का नाश करने वाला है। इस श्रद्धा का आनुषङ्गिक फल है-इन्द्र, चक्रवर्ती, विद्याधर आदि की सम्पदा का लाभ और वास्तविक फल है मोक्ष का कारण केवलज्ञान, जिसमें कि अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य ये चार अनन्तचतुष्टय-आत्मा की खास शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं। वह श्रद्धा आप भव्यजनों का कल्याण करे ॥१३॥

८४. आत्मनिन्दा करने वाली की कथा

चारों प्रकार के देवों द्वारा पूजे जाने वाले जिन भगवान् को नमस्कार कर उस स्त्री की कथा लिखी जाती है कि जिसने अपने किए पापकर्मों की आलोचना कर अच्छा फल प्राप्त किया है ॥१॥

बनारस के राजा विशाखदत्त थे। उनकी रानी का नाम कनकप्रभा था। इनके यहाँ एक चितेरा रहता था। इसका नाम विचित्र था। वह चित्रकला का बड़ा अच्छा जानकार था। चितेरे की स्त्री का नाम विचित्रपताका था। उसके बुद्धिमती नाम की एक लड़की थी। बुद्धिमती बड़ी सुन्दरी और चतुर थी ॥२-४॥

विचित्रचित्रकारस्य चित्रं चित्रयतः पितुः। बुद्धिमत्या समादाय भोजनं गतया तथा ॥५॥
लीलया लिखितं तत्र भूपतेर्मणिकुट्टिमे। स्वच्छं मयूरपिच्छं तद्-गृह्णन् राजाल्पधीर्मतः ॥६॥
तथान्यदिवसे राज्ञो दर्शयश्चित्रमद्भुतम्। भणितः पितरम् चेति तथा पुत्र्या सुधूर्तया ॥७॥
शीघ्रमागच्छ भो तात मा कुरु त्वं विलम्बलनम्। यौवनं साम्प्रतं याति भोजनस्य विचक्षण ॥८॥
तद्वचस्तु समाकर्ण्य भूपतिश्चित्रिताशयः। मुखं पश्यन्मूर्खोऽसौ भणितश्च तथा पुनः ॥९॥
तथान्यदा तथा चापि कुड्यप्रच्छादने शुभे। अपनीते द्वितीये च कुड्ये चित्रावलोकने ॥१०॥
स राजा भणितो मूर्ख-स्ततः सोपि महीपतिः। पृष्ट्वा तत्कारणं सर्वं तुष्टस्तां परिणीय च ॥११॥
सर्वस्वान्तःपुरे चक्रे सुप्रधाना सुवल्लभा। गुणाः कुर्वन्ति दूतत्वं पुण्यतो भव्यदेहिनाम् ॥१२॥

एक दिन विचित्र चितेरा राजा के खास महल में, जो कि बड़ा सुन्दर था, चित्रकारी कर रहा था। उसकी लड़की बुद्धिमती उसके लिए भोजन लेकर आयी। उसने विनोद वश हो भीत पर मोर की पीछी का एक चित्र बनाया वह चित्र इतना सुन्दर बना कि सहसा कोई न जान पाता कि वह चित्र है। जो उसे देखता वह यही कहता कि यह मोर की पीछी है। इसी समय महाराज विशाखदत्त इस ओर आ गए। वे उस चित्र को मोर की पीछी समझ उठाने को उसकी ओर बढ़े। यह देख बुद्धिमती ने समझा कि महाराज बे-समझ है। नहीं तो इन्हें इतना भ्रम नहीं होता ॥५-६॥

दूसरे दिन बुद्धिमती ने एक और अद्भुत चित्र राजा को बतलाते हुए अपने पिता को पुकारा- पिताजी, जल्दी आइए, भोजन की जवानी का समय बीत रहा है। बुद्धिमती के इन शब्दों को सुनकर राजा बड़े अचम्भे में पड़ गया। वह उसके कहने का कुछ भाव न समझ कर एक टक की लगाये उसके मुँह की ओर देखता रह गया। राजा को अपना भाव न समझा देख बुद्धिमती को उसके मूर्ख होने का और दृढ़ विश्वास हो गया ॥७-९॥

अब की बार बुद्धिमती ने एक और चाल चली। एक भीत पर दो परदे लगा दिये और राजा को चित्र बतलाने के बहाने उसने एक परदा उठाया। उसमें चित्र न था। तब राजा उस दूसरे परदे की ओर चित्र की आशा से आँखें फाड़कर देखने लगा। बुद्धिमती ने दूसरा परदा भी उठा दिया। भीत पर चित्र को न देखकर राजा बड़ा शर्मिदा हुआ। उसकी इन चेष्टाओं से उसे पूरा मूर्ख समझ बुद्धिमती ने जरा हँस दिया। राजा और भी अचम्भे में पड़ गया। वह बुद्धिमती का कुछ भी अभिप्राय न समझ सका। उसने तब व्यग्र हो बुद्धिमती से ऐसा करने का कारण पूछा। बुद्धिमती के उत्तर से उसे जान पड़ा कि वह उसे चाहती है और इसलिए पिता को भोजन के लिए पुकारते समय व्यंग से राजा पर उसने अपना भाव प्रकट किया था। राजा उसकी सुन्दरता पर पहले ही से मुग्ध था, सो वह बुद्धिमती की बातों से बड़ा खुश हुआ। उसने फिर बुद्धिमती के साथ ब्याह भी कर लिया। धीरे-धीरे राजा का उस पर इतना अधिक प्रेम बढ़ गया कि अपनी सब रानियों में पट्टरानी उसने उसे ही बना दिया। सच बात यह है कि प्राणियों की उन्नति के लिए उनके गुण ही उनका दूतपना करते हैं, उन्हें उन्नति पर पहुँचा देते हैं ॥१०-१२॥

तस्याः सेवागतं सर्वं दुष्टमन्तःपुरं तदा। मस्तके टोल्लकाङ्कत्वा गच्छति स्म दिनं प्रति ॥१३॥
 ततो बुद्धिमती सा च संजाता दुर्बला सती। जिनालयं प्रविश्योच्चैः पापस्य विलयप्रदम् ॥१४॥
 जिनेन्द्रप्रतिमाग्रे च कार्यसिद्धिविधायिनि। आत्मनिन्दां करोति स्म भक्तिभारेण मण्डिता ॥१५॥
 श्रीजिनेन्द्रजगद्धन्य स्वर्गमोक्षप्रदायक। अहं दीनकुलोत्पन्ना कस्य दोषोत्र दीयते ॥१६॥
 त्वमेव शरणं तात दुःखदावाग्निवारिद। किमन्यैर्बहुभिर्देवैः कामक्रोधादिदूषितैः ॥१७॥
 एकान्ते निन्दनं चेति कुर्वती स्वगृहे स्थिता। पृष्ठापि भूभुजा वक्ति नैव दौर्बल्यकारणम् ॥१८॥
 अथैकस्मिन्दिने श्रीमज्जिनेन्द्रभवनं शुभम्। पूर्वं प्राप्तेन तद्राज्ञा श्रुत्वा तद्दुःखकारणम् ॥१९॥
 अन्तःपुरं सुनिर्भर्त्स्य कृत्वा सेवापरं तराम्। सती बुद्धिमती सा च सुप्रधाना कृता मुदा ॥२०॥
 एवमन्यैर्बुधैश्चापि श्रीजिनाग्रे सुभक्तितः। क्षुल्लकाद्यैः प्रकर्त्तव्या स्वात्मनिन्दा शुभश्रिये ॥२१॥

राजा ने बुद्धिमती को सारे रनवास की स्वामिनी बना तो दिया, पर उसमें सब रानियाँ उस बेचारी की शत्रु बन गई, उससे डाह, ईर्ष्या करने लगीं। आते-जाते वे बुद्धिमती के सिर पर मारती और उसे बुरी-भली सुनाकर बेहद कष्ट पहुँचातीं। बेचारी बुद्धिमती सीधी-साधी थी, सो न तो वह उनसे कुछ कहती और न महाराज से ही कभी उनकी शिकायत करती। इस कष्ट और चिन्ता से मन ही मन घुलकर वह सूख सी गई। वह जब जिन मन्दिर दर्शन करने जाती तब सब सिद्धियों के देने वाले भगवान् के सामने खड़े हो अपने पूर्व कर्मों की निन्दा करती और प्रार्थना करती कि हे संसार पूज्य, हे स्वर्ग-मोक्ष के सुख देने वाले, हे दुःखरूपी दावानल के बुझाने वाले मेघ, और हे दयासागर, मैं एक छोटे कुल में पैदा हुई हूँ, इसीलिए मुझे ये सब कष्ट हो रहे हैं। पर नाथ, इसमें दोष किसी का नहीं। मेरे पूर्व जन्म के पापों का उदय है। प्रभो, जो हो, पर मुझे विश्वास है कि जीवों को चाहे कितने ही कष्ट क्यों न सता रहे हों, पर जो आपको हृदय से चाहता है, आपका सच्चा सेवक है, उसके सब कष्ट बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं और इसीलिए हे नाथ, कामी, क्रोधी, मानी, मायावी देवों को छोड़कर मैंने आपकी शरण ली है। आप मेरा कष्ट दूर करेंगे ही। बुद्धिमती न मन्दिर में ही किन्तु महल पर भी अपने कर्मों की आलोचना किया करती। वह सदा एकान्त में रहती और न किसी से विशेष बोलती-चालती। राजा ने उसके दुर्बल होने का कारण पूछा-बार-बार आग्रह किया, पर बुद्धिमती ने उससे कुछ भी न कहा ॥१३-१८॥

बुद्धिमती क्यों दिनों-दिन दुर्बल होती जाती है, इसका शोध लगाने के लिए एक दिन राजा उसके पहले जिनमन्दिर आ गया। बुद्धिमती ने प्रतिदिन की तरह आज भी भगवान् के सामने खड़ी होकर आलोचना की। राजा ने वह सब सुन लिया। सुनकर वह सीधा महल पर आया। अपनी सब रानियों को उसने खूब ही फटकारा, धिक्कारा और बुद्धिमती को ही उनकी मालकिन-पट्टरानी बनाकर उन सबको उसकी सेवा करने के लिए बाध्य किया ॥१९-२०॥

जिस प्रकार बुद्धिमती ने अपनी आत्म-निन्दा की, उसी तरह अन्य बुद्धिमानों और क्षुल्लक

शुभकुलोत्तमशर्मविधायिनी जिनपतेः पदभक्तिरसौ सदा।
भवतु दुर्गतिदुःखविनाशिनी शिवपदं मम देव यतो मुदा ॥२२॥
इति कथाकोशे आत्मनिन्दाप्राप्तफलदृष्टान्ताख्यानं समाप्तम्।

८५. आत्मनिन्दाख्यानम्

सर्वदोषप्रहर्तारं कर्तारं शर्मणः सताम्। नत्वा जिनं प्रवक्ष्येहं स्त्रीकथां गर्हणाश्रिताम् ॥१॥
अयोध्यानगरे राजा दुर्योधन इतीरितः। श्रीदेवीकामिनीनाथः संजातो न्यायमण्डितः ॥२॥
बभूव ब्राह्मणस्तत्र सर्वोपाध्यायनामभाक्। ब्राह्मणी तस्य वीराख्या यौवनोन्मत्तमानसा ॥३॥
साद्धं छात्रेण संसक्ता पापिनी साग्निभूतिना। हत्वा पतिं निजं वृद्धं सर्वोपाध्यायकं तदा ॥४॥
छत्रिकायां समारोप्य कृष्णरात्रौ श्मशाने तं। निक्षेप्तुं च गता तत्र कोपाद्व्यन्तरदेवता ॥५॥
छत्रिकां कीलयामास मस्तके संजगाद च। प्रभाते पुरनारीणा-मग्रतस्तु गृहे गृहे ॥६॥

आदि को भी जिन भगवान् के सामने भक्तिपूर्वक आत्मनिन्दा-पूर्वक कर्मों की आलोचना करना उचित है। उत्तम कुल और उत्तम सुखों की देन वाली तथा दुर्गति के दुःखों की नाश करने वाली जिन भगवान् की भक्ति मुझे भी मोक्ष का सुख दें ॥२१-२२॥

८५. आत्मनिन्दा की कथा

सब दोषों के नाश करने वाले और सुख के देने वाले ऐसे जिन भगवान् को नमस्कार कर अपने बुरे कर्मों की निन्दा-आलोचना करने वाली बीरा ब्राह्मणी की कथा लिखी जाती है ॥१॥

दुर्योधन जब अयोध्या का राजा था तब की यह कथा है। यह राजा बड़ा न्यायी और बुद्धिमान् हुआ है। इसकी रानी का नाम श्रीदेवी था। श्रीदेवी बड़ी सुन्दरी और सच्ची पतिव्रता थी। यहाँ एक सर्वोपाध्याय नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम वीरा था। उसका चाल-चलन अच्छा न था। जवानी के जोर में वह मस्त रहा करती थी। उपाध्याय के घर पर एक विद्यार्थी पढ़ा करता था। उसका नाम अग्निभूति था। वीरा ब्राह्मणी के साथ इसकी अनुचित प्रीति थी। ब्राह्मणी इसे बहुत चाहती थी। पर उपाध्याय इन दोनों के सुख का काँटा था। इसलिए ये मनमाना ऐशोआराम न कर पाते थे। ब्राह्मणी को यह बहुत खटका करता था। सो एक दिन मौका पाकर ब्राह्मणी ने अपने पति को मार डाला और उसे श्मशान में फेंक आने को छत्री में छुपाकर अन्धेरी रात में वह घर से निकली। श्मशान में जैसे ही उपाध्याय के मुर्दे को फेंकने को तैयार हुई कि एक व्यन्तरदेवी ने उसके ऐसे नीच कर्म पर गुस्सा होकर छत्री को कील दिया और कहा-“सबेरा होने पर जब तू सारे शहर की स्त्रियों के घर-घर पर जाकर अपना यह नीच कर्म प्रकट करेगी, अपने कर्म पर पछतायेगी तब तेरे सिर पर से यह छत्री गिरेगी।” देवी के कहे अनुसार ब्राह्मणी ने वैसा ही किया। तब कहीं उसका पीछा छूटा, छत्री सिर से अलग हो सकी। इस आत्म-निन्दा से ब्राह्मणी का पापकर्म बहुत हल्का हो गया, वह